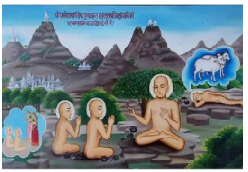

प्रथम श्रुतस्कंध प्रणेता

श्रुतपंचमी

(गौरवमयी इतिहास)

द्वितीय श्रुतस्कंध प्रणेता

प्रवचनांश : पूज्य बाबू 'युगल', जी कोटा
संकलन : ब्र. नीलिमा जैन, कोटा

'श्रुत पंचमी' महापर्व दिगंबर जैन शासन का गरिमामय मुक्ति का प्रकाशन कराने वाला लोकोत्तर पर्व है, इस पर्व को 'श्रुत देवता' की जयन्ती दिवस भी कहा जाता है, सचमुच 2000 वर्ष से चली आई श्रुतधारा की अविच्छिन्न परम्परा का श्रेय एकमात्र श्रुत पंचमी को ही है।

'ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी' अर्थात् आज के दिन सिद्धान्त का शीश महल 'षट्खण्डागम' का लेखन पूर्ण हुआ था, जो जैन संस्कृति के साहित्य कोष की अमूल्य निधि है, संपूर्ण भारत में यह पर्व 'प्रथम श्रुत स्कन्ध' के मांगलिक उद्घाटन के रूप में मनाया जाता है। इस पर्व का तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सर्व ही मंगल स्वरूप है, वंदनीय है और पूज्यनीय है क्योंकि यह साक्षात् श्रुत देवता से हमारी भेंट कराता है।

एक ओर महत्त्वपूर्ण तथ्य – यह पंचमी की तिथि भी अत्यन्त मंगलस्वरूप है। अरे! हमारे लिए 'पंचम परम पारिणामिक भाव' की अनुभूति का अलौकिक संदेश लेकर आई है, कारण कि इस परम पंचम शुद्ध भाव के अवलंबन से ही पंचमगति अर्थात् मुक्ति का मंगल प्रभात होता है।

Created by Universal Document Converter

माँ सरस्वती के इस अक्षय भंडार का सर्वमयी इतिहास कोई नया नहीं, बल्कि अति प्राचीन है तथा इसे वर्तमान युग से जोड़े रखना हमारा मौलिक दायित्व है, तभी माँ जिनवाणी का आरक्षण व संरक्षण हो सकेगा, वरना यह तीर्थंकर जिन देशना 'शब्द ब्रह्म, आगम व परमागम का भवान्तरकारी वैभव भविष्य में लुप्त हो जाने वाला है। अतः इस दिन हम कटिबद्ध होकर दृढ़ संकल्प पूर्वक इस उपकारी माँ को जीवंत रखने की अवश्य प्रतिज्ञा करें।

श्रुतपंचमी पर्व की यह प्रवाहित गंगा जिसे हम 'शब्द ब्रह्म' कहते हैं, सचमुच! भगवान वीरनाथ की दिव्य वाणी का ही प्रदेय है और यह पर्व उस शाश्वत शब्द ब्रह्म की ही एक कड़ी है, अतः इसके सर्वोच्च मूलकर्ता तो तीर्थनायक महावीर ही हैं, पश्चात् उनकी ओंकार ध्वनि को अन्तर्मुहूर्त में अपने विशिष्ट ज्ञान में अवधारण कर, बारह अंगों में विभाजित कर लेने वाले श्रुतकेवली गणधर परमात्मा 'इन्द्रभूति गौतम' हुए, उनका यह शब्द श्रुत, उत्तरोत्तर श्रुत के धारक आचार्यों एवं मुनि भगवंतों को प्राप्त होता रहा, इस तरह क्रम-क्रम से शब्द व ब्रह्म का अनादि प्रवाह चला आ रहा है, सृष्टि में कुछ भी नया नहीं है। अरे! सारा ही विश्व जड़-चेतन की अकृत नगरी है, इससे भी गौरव की बात यह कि वीतरागता तथा सर्वज्ञता का चक्षु-केवल-केवल इस दर्शन के पास है, जिसमें संपूर्ण चर-अचर जगत दर्पणवत् प्रतिबिंबित होते हैं, अतः इसका हर वचन, अर्थ व तत्त्व अनेकांत व स्याद्वाद की मुद्रा से प्रामाणिकता को प्राप्त और सत्य के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

श्रुत का उदय कब हुआ? यह बात कोई गंभीर विचार की नहीं, क्योंकि श्रुत व उसकी वाणी का जन्म श्रुतधरों से होता है। तीर्थंकरों व केवली परमात्माओं से होता है और तीर्थंकर अरहंत देव द्वारा धर्म

Created by Universal Document Converter

तीर्थ का प्रवर्तन अनादि से बेरोक चला आ रहा है, इसलिए श्रुत व शब्द का अनादि मानने में किसी प्रकार की शंका व बाधा उपस्थित नहीं होती। वास्तव में शब्द तो पौद्गलिक जड़ ही है, परन्तु जड़ होने पर भी यह निज ब्रह्म (शुद्धात्मा) को ही बताने वाला है, कारण कि इसके बिना अमूर्त तत्त्व की उपलब्धि संभव नहीं है। इन जड़ शब्दों में भी वस्तु के निरूपण की अद्भुत क्षमता होती है और ज्ञान में वस्तु के अनुभव की असीम सामर्थ्य। जिससे हमारा ज्ञान द्रव्यश्रुत के अवलंबन द्वारा, तत्त्वों का सही निर्णय करता हुआ भाव स्वरूप, चैतन्य ब्रह्म की आनंदमय अनुभूति कर लेता है, जिसे परम ब्रह्मानन्द कहते हैं।

भाग्यशाली हैं हम कि यह द्रव्य एवं भाव महाश्रुत स्कन्ध हजारों वर्ष बीत जाने पर भी हमें अखण्ड रूप प्राप्त हो गया, लेकिन कैसे? इसके पीछे एक अद्भुत इतिहास गूंथा हुआ है, अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् गौतम, सुधर्माचार्य व जम्बूस्वामी ये तीन केवली हुए, फिर इसी परम्परा में पाँच श्रुत केवली हुए एवं अनेक द्वादशांग के पाठी व श्रुत के धारक आचार्य हुए। उस समय जीवों का क्षयोपशम अति निर्मल व विकास वाला होता था, इसलिए सब कुछ प्रमेय मौखिक स्मरण में रह जाया करता था, कालानुसार धीरे-धीरे द्वादशांग के पाठी आचार्यों का भी लोप होने लगा, उत्तरकाल में होने वाले आचार्यों में किसी को कुछ पूर्वों व अंगों का ज्ञान, किसी को एक अंग का अथवा एक अंग के एक हिस्से का ज्ञान किसी को पूर्व के कुछ हिस्से का ज्ञान, इस तरह भिन्न-भिन्न क्षयोपशम की योग्यता के धारक आचार्य हुए, यह एक निश्चित बन्धबाधित सत्य है कि तीर्थंकरों के समय ज्ञान उत्कर्ष पर होता है, फिर धीरे-धीरे उसका ह्रास होने लगता है, इसे काल का दोष

Created by Universal Document Converter

कहा तो जाता है लेकिन सामर्थ्य तो यह है कि हमारे ज्ञान की उपादान योग्यता ही ऐसी होती है कि वह द्वादशांग के कुछ अंश को भी मौखिक ग्रहण नहीं कर पाता, किंचित् ग्रहण हो पाता है, तीव्र रुचि हो तो ? इसलिए मुक्तिमार्ग के लिए द्वादशांग श्रुत का लेखन होना अति आवश्यक है।

भगवान वीरनाथ के बाद भी 683 वर्ष तक क्षयोपशम का विकास पूर्ववत् बना रहा – फिर क्रमशः आचार्य परम्परा से आकर अंगों व पूर्वों का एकदेश ज्ञान सिद्धान्त साधक आचार्य धरसेन को प्राप्त हुआ। आगम के उल्लेखानुसार इनका समय विक्रम की दूसरी शताब्दी संवत् 144 अथवा ईस्वी की पहली शताब्दी सन् 87 माना गया है। नंदीसंघ की प्राकृत पट्टावली से ऐसा ज्ञात हुआ कि आचार्य धरसेन के दादा गुरु आचार्य अर्हद्बलि और गुरु आचार्य माघनंदी थे और पुन्नरसंघ की गुरुवावली में एक लेख ऐसा भी आया है कि ये दीपसेन के शिष्य व सुधर्मसेन के गुरु थे।

महातपोधनि आचार्य धरसेन सौराष्ट्र देश के 'गिरीनगर' की 'चन्द्रगुफा' में ध्यान करते थे, उन्हें द्वादशांगश्रुत के 14 पूर्वों में दूसरा अग्रायणी पूर्व के पाँचवें वस्तु अधिकार के, महाकर्म प्रकृति नामक चौथे प्राभृत का ज्ञान था, आचारांग के पूर्ण ज्ञाता अथवा 'धवलानुसार' अंगों व पूर्वों के एकदेश ज्ञाता थे तथा अष्टांग महानिमित्त-ज्ञान के धारी, एकांत में ध्यान की सिद्धि करने वाले मंत्र-तंत्र आदि शास्त्र विद्याओं में प्रवीण, प्रवचन वत्सल आदि सहस्त्रों गुणों के अधिपति आचार्य धरसेन रहे हैं।

ओहो! सम्यक् श्रुतज्ञान का बहुमुखी विकास साथ होने पर भी विधि के अटल नियमानुसार देह की स्थिति शनैः-शनैः क्षीण होती जा रही थी और वे वृद्धावस्था में प्रवेश कर चुके थे, अकस्मात् उन्होंने

Created by Universal Document Converter

अपने निमित्तज्ञान से यह जाना कि मेरी आयु अल्प रह गई है और कालानुसार जीवों की बुद्धि में ज्ञान धीरे-धीरे मंद होता जा रहा है तथा मेरा शेष ज्ञान भी मेरे साथ ही चला जाने वाला है। अरे! रे! ''इस कल्याणकारी सर्व श्रुत का विच्छेद हो जायेगा'' ऐसी आशंका से उन्हें 'श्रुत देवता' की सुरक्षा का एक गंभीर एवं करुण विकल्प आया ''कि यह सिद्धान्त सूत्र का ज्ञान किसी सुयोग्य पात्र को मिलना चाहिए, जिससे श्रुत की अविराम धारा हजारों वर्षों तक जीवित रह सके, कारण कि यह श्रुत ही घोर अज्ञान से त्रस्त प्राणियों को निगोद से उठाकर सीधा मुक्ति में बिठा देने वाला है, ऐसा स्वयं का सम्यक् अभिप्राय उन्होंने अपने मुनिसंघ में व्यक्त किया।

योगायोग! उसी समय आंध्रप्रदेश में वेणाक नदी के तट पर स्थित 'महिमा नगरी' में पंचवर्षीय मुनि सम्मेलन हो रहा था, वहाँ के संघपति महासेनाचार्य को आचार्य धरसेन ने पत्र लिखवाया कि विद्या ग्रहण में समर्थ विनयवंत, शीलवंत, देश, कुल व जाति से उत्तम, वैराग्यसम्पन्न निर्मल ज्ञानधारी ऐसे दो समर्थ मुनिराजों को चुनकर मेरे पास भेजिए।

पत्र द्वारा आचार्य धरसेन का श्रुतरक्षण संबंधी अभिप्राय तत्काल ही समझते हुए, महासेनाचार्य ने मुनि सम्मेलन से अविलंब ही, सुबुद्धि और नरवाहन - इन दो मुनिराजों को आचार्य धरसेन के पास जाने की आज्ञा दी, वे दोनों अत्यन्त विनयशील, कुशाग्रबुद्धि, महातपोनिधि, समस्त कलाओं में पारंगत थे। गुरुवर महासेन की आज्ञा को, शिरोधार्य करते हुए, दोनों ऋषिगण दक्षिणपथ - आंध्रप्रदेश से सौराष्ट्र के गिरी नगर की ओर प्रस्थान कर गये।

मस्त मतंग की तरह विहार करते हुए द्वय मुनि पुंगव निर्विघ्न, गिरी नगर आचार्यश्री के निकट पहुँचे, उसी रात आचार्य धरसेन को

Created by Universal Document Converter

एक शुभ स्वप्न आया कि दो पराक्रमी उन्नत, विनम्र श्वेत बैल युगल, तीन प्रदक्षिणा देकर प्रणाम कर, मेरे समक्ष खड़े हैं। यह देखते हुए तत्काल स्वप्न टूटने के साथ क्षण मात्र में उनकी निद्रा भंग हो गई और 'श्रुत देवता जयवंत रहे' - प्रातःकाल ऐसा उच्चारण करते हुए वे पद्मासनमुद्रा में बैठ गये। ज्योंहि नेत्र खुले, तो देखा कि दो मुनिराज हाथ जोड़े उनके समक्ष खड़े हैं, तब दोनों मुनीश्वरों ने आचार्य धरसेन के चरणों में विधिपूर्वक विनम्र वंदना की, आचार्यश्री ने उन्हें मंगल आशीर्वाद देते हुए उनकी व संघ की कुशलक्षेम पूछी और अपनी भावना व्यक्त कर उन्हें श्रुत संरक्षण का उद्देश्य बताते हुए कहा कि मेरे पास यह जो सिद्धान्त का ज्ञान है, वह मैं आपको देना चाहता हूँ क्योंकि अवस्थानुसार यह ज्ञान उत्तरोत्तर हीन होता जा रहा है, अतः आप इसे विशद प्रज्ञा द्वारा अपने बुद्धि कोष में संग्रहित कर लें।

दोनों साधु निर्मल बोधि सम्पन्न तो है ही, परन्तु देश, काल भी दुष्कर, कठिन परिस्थितियों में क्या यह मेरे इस महाकर्मप्रकृति सिद्धान्त को सुरक्षित रख सकेंगे? ऐसे दूरगामी विचार पूर्वक आचार्य धरसेन ने दोनों मुनिराजों की परीक्षा करना उचित समझा और उन्होंने दो विद्यायें एक अधिकाक्षरी एवं दूसरी हीनाक्षरी दोनों मुनिवरों को देकर, इन्हें षष्ठोपवास में सिद्ध करने को कहा।

गुरु भगवन् की आज्ञा पाकर द्वय मुनि भगवन्तों ने विद्यायें सिद्ध करना प्रारंभ किया, विद्यासिद्धि के फलस्वरूप वहाँ दो देवियाँ अपने विकृत रूप में प्रगट हुईं, जिनमें एक के दांतों की पंक्ति अस्त-व्यस्त थी तथा दूसरी कानी थी, यह दृश्य देख चतुर मुनिराजों ने समझ लिया कि अवश्य ही विद्याओं में कोई त्रुटि है क्योंकि देवियों के रूप कभी भी विद्रूप व विकलांग नहीं हुआ करते। ऐसी जिन सूत्रों की दृढ़ आस्था के साथ, उन्होंने शीघ्रता से, व्याकरण की कुशलता द्वारा

Created by Universal Document Converter

विद्याओं की शुद्धि कर, पुनः साधना की तो देवियाँ अपने सुन्दर स्वाभाविक व दिव्यरूप में प्रकट हुई। पश्चात् मुनिवरों के तप व ज्ञान की महिमा देख, उन्हें नमन कर पुनः अपने स्थान पर चली गईं।

मंत्र परीक्षा के संबंध में मन में एक प्रश्न सहज ही उभर आता है कि आंध्रप्रदेश से लंबे मार्ग में गमन करते हुए अनेक विपदाओं को झेलते हुए, दोनों तपस्वी सौराष्ट्र के गिरिनगर पधारे और यहाँ आते ही आचार्यश्री ने मंत्रसिद्धि के लिए छह दिन के उपवास में प्रतिबद्ध कर दिया, ऐसा क्यों ? संघ अधिष्ठाता आचार्यदेव तो महाविचक्षण अकारण करुणावंत, महतीप्रज्ञा के धनी होते हैं, परीक्षा के पीछे अवश्य कोई पुष्ट कारण होना चाहिए, इसका सबल व गंभीर हेतु यह हो सकता है कि छह दिन के उपवास द्वारा, उन्होंने मुनिवरों के उग्र संयम व चारित्र की एवं मंत्र त्रुटि द्वारा उनके सम्यक् व वृहद् श्रुतज्ञान की परीक्षा लेना योग्य समझा क्योंकि देश, काल, देहादि व आहारादि की विषम परिस्थितियों में किसी प्रकार का स्खलन व वेदना उत्पन्न न हो जिससे यह महाश्रुत लेखन कार्य अवरुद्ध न हो जाये, सचमुच मुनिराजों की तो आहारचर्या श्रावकों के आधीन होती है, अत्यन्त मर्यादित व कठोर नियमों में बंधी होती है। संभवतः इस अनुरोध से उन्होंने यह कठिन परीक्षा लेना उचित समझा।

विद्या सिद्धि के पश्चात् दोनों महर्षि आचार्यश्री के पास पहुँचे और उन्हें वंदन कर संपूर्ण वृतान्त सुनाया, धरसेन स्वामी ने प्रसन्नता व्यक्त की, साथ ही उनकी मंत्र शुद्धि की कुशलता से यह जान लिया कि वे सिद्धान्त सिखाने के सुयोग्य पात्र हैं, तब उन्हें शुभ तिथि व शुभ नक्षत्र में क्रमसर सिद्धान्त का शिक्षण देना प्रारंभ किया, यह सारा शिक्षण मौखिक ही चला। जितना उनके पास सूत्र ज्ञान था, वह

Created by Universal Document Converter

अवशेष रखे बिना अखण्डरूप से अपने शिष्यों को सौंप दिया। आचार्य धरसेन की आयु निकट थी तथा लिखने का समय नहीं था। किन्तु ये दोनों मुनिराज अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग के धारक थे, अतः उन्होंने सूत्र द्वारा प्रदत्त ज्ञान को अपने बुद्धि कोष में संग्रहित कर लिया।

किसी धन्य घड़ी में यह श्रुताभ्यास आषाढ़ शुक्ला एकादशी को पूर्ण हुआ, उसी समय भूत (व्यंतर) जाति के देवों ने पुष्पहारों, शंख तूर्य व वादित्रों की मधुर ध्वनि के साथ नरवाहन व सुबुद्धि की पूजा की, इसलिए आचार्य धरसेन ने नरवाहन का नाम भूतबलि रखा और देवों ने सुबुद्धि मुनिराज की दांतों की अस्त-व्यस्त पंक्ति को सुन्दर व व्यवस्थित दिया था, उनका नाम आचार्य ने पुष्पदंत रखा, यह विद्यास्थानों के पारगामी महाआचार्य, पुष्पदन्त और भूतबलि इस 'षट्खण्डागम' के रचनाकार हैं।

सिद्धान्त सूत्रों का आद्योपान्त शिक्षण पूर्ण हो जाने पर आचार्य धरसेन ने उसे लिपिबद्ध करने को कहा और फिर उन्हें वहाँ से विदा होनें की आज्ञा दी, क्योंकि वे वृद्ध हो चुके थे, और अपनी आयु की निकटता का उन्हें अवभासन भी हो गया था, इसलिए उन्हें एक हल्का सा विकल्प आया कि यदि दोनों मुनिराज यहाँ ठहर गये तो मेरे अनुराग से श्रुत लेखन का महान कार्य अवरुद्ध हो जायेगा, इस संभावना से आचार्यश्री ने वर्षा काल निकट जान दोनों मुनिश्वरों को वहाँ से विदा कर दिया।

रत्नत्रय साधक वे महामुनिवर अपने शिक्षा गुरु को प्रणाम कर उनकी दिव्य देशना को अपने ज्ञान के पिटारे में भर गिरनार से अंकलेश्वर की ओर प्रस्थान कर गये - यह भी गुजरात का ही एक

Created by Universal Document Converter

हिस्सा है, वहाँ दोनों मुनि संतों ने चार्तुमास व्यतीत किया, चार्तुमास पूर्ण होने पर बड़े आचार्य पुष्पदंत, दक्षिण कर्नाटक में वनवास देश की ओर विहार कर गये और आचार्य भूतबलि-पुष्पदंत दक्षिण भारत में द्रविड देश को पधार गये। इस आलेख से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में काठियावाड़ से लगाकर देश के दक्षिण भाग तक दिगंबर मुनिराजों का प्रचुरता से विहार होता था, ऐसे विक्रम की दूसरी शताब्दी के संकेत मिलते हैं।

आचार्य पुष्पदंत भी महाकर्म प्रकृति के ज्ञाता थे, उन्होंने वनवास देश में सिद्धान्त ग्रथ लिखना प्रारंभ किया, जिसका छह खण्डों में विभाजन होने से यह 'षट्खण्डागम' के नाम से विख्यात हुआ। 1. जीवट्ठाण, 2. खुद्दाबंध, 3. बंध स्वामित्व विचय, 4. वेदना, 5. वर्गणा, 6. महाबंध - इसमें ये छह खण्ड हैं। प्रथम जीवट्ठाण खण्ड के सत् प्ररूपणा पर आचार्य पुष्पदंत ने बीस अधिकार में 177 सूत्र लिखे, जिन्हें 'बीसादि सूत्र' कहते हैं, इसके उपरांत वे नहीं लिख पाये, संभवत: वे वृद्ध थे और यह कर्म प्राभृत अपूर्ण न रह जाये, ऐसी आशंका से उन्होंने इन सूत्रों को अपने मामा राजा जिनपालित को पढ़ाया, जब वे सूत्र पठन में निपुण हो गये, तो उन्हें योग्य जान दीक्षित कर दिया पश्चात् उन्हीं के साथ आचार्य भूतबलि के पास द्रविड देश भेज दिया। मुनिराज जिनपालित ने ये सूत्र आचार्य भूतबलि को पढ़कर सुनाये, उन्होंने शीघ्र ही उनके अभिप्राय को समझ लिया कि मुझे इस महा सिद्धान्त को पूर्ण करना है, ऐसा त्वरित निर्णय लेकर आचार्य भूतबलि ने लेखन प्रारंभ किया, सत् प्ररूपणा के बीस अधिकार के अतिरिक्त जो शेष पाँच खण्ड हैं, उन पाँच खण्डों पर आचार्य भूतबलि ने 6000 सूत्र रचे, इसमें आचार्य पुष्पदंत के 177

Created by Universal Document Converter

सूत्र भी सम्मिलित हैं तथा इसके छठे खण्ड 'महाबंध' पर स्वयं आचार्य भूतबलि ने 30 हजार श्लोक प्रमाण विशद रचना की इसमें कर्म प्रकृति के उदय, बंध, सत्ता आदि का विस्तार से वर्णन है। इस प्रकार षट्खण्डागम का अधिक भाग आचार्य भूतबलि द्वारा लिखा गया, सिद्धान्त के अंतर्गत उनकी रचना शक्ति व विद्वत्ता का अद्भुत दर्शन होता है।

यह पुनीत लेखन ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को पूर्ण हुआ, इस भव्य श्रुत भवन की निष्पन्नता देख हर्षित चित्त आचार्य भूतबलि ने 'षट्खण्डागम' की ताड़पत्रीय रचना को पुस्तकारूढ कर चतुर्विध संघ के साथ इस श्रुतदेवता और श्रुतज्ञान की पूजा की तथा देवों द्वारा पुष्प वृष्टि हुई, पश्चात् आचार्य भूतबलि ने इसे जिनपालित मुनिराज के साथ पुनः वृद्ध आचार्य पुष्पदंत के पास भेज दिया इस वृहद् श्रुतस्कन्ध की साकारता देख प्रमुदित मन से भक्तिपूर्वक चतुर्विध संघ सहित उन्होंने भी इस महासिद्धान्त की पूजा की तथा जिनपालित के साथ ही आचार्य भूतबलि के पास भेज दिया। तभी से श्रुत अवतरण का गौरवशाली प्रतिष्ठा पर्व दि. जैन समाज में अविराम रूप से चला आ रहा है।

आगम में दोनों आचार्यों का परिचय ऐसा प्राप्त होता है कि आचार्य पुष्पदंत राजा जिनपालित के भानजे थे तथा उनके समकालीन रहे हैं, आपने उन्हें बीसादि सूत्रों का अध्ययन भी कराया, इससे अनुमान लगा सकते हैं कि आपका जन्म स्थान राजा जिनपालित की राजधानी वनवास देश या करहाटक ही है। वहाँ से चलकर आप पुण्ड्रवर्धन अर्हद्बलि आचार्य के स्थान पर आये थे और उनके चरणों के निकट रहकर, उनसे ही दीक्षित होकर, आचार्य के साथ ही

Created by Universal Document Converter

महिमा नगरी (आंध्रप्रदेश) चले गये, आचार्य वीरसेन ने भी अपनी टीका में आचार्य पुष्पदंत का स्तवन करते हुए लिखा है कि ''पुष्पदंत अपने समय के आचार्यों में अत्यन्त मान्य थे और वे ऋषियों की समिति अर्थात् सभा के सभापति कहलाते थे।''

नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावली के अनुसार आचार्य पुष्पदंत का समय वीर नि.सं. 593-633 के पश्चात् सन् प्रथम-द्वितीय शताब्दी के लगभग माना गया है।

आचार्य भूतबलि के संबंध में भी बड़ा ही सुन्दर उल्लेख आया है कि आप महाकर्म प्रकृति प्राभृत के पूर्ण ज्ञाता थे, इसलिए उनके द्वारा रचित सिद्धान्त ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष और अर्थपूर्ण है। इस प्रकार हम देखें कि आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि का समय एक ही है।

प्राकृत पट्टावली, नंदिसंघ की गुर्वावली व श्रुतावतार आदि प्रमाणों के अनुसार भूतबलि का समय ई. 66-156 की प्रथम शताब्दी का अंत और द्वितीय शताब्दी का प्रारंभ के लगभग माना गया है, धवला की प्रस्तावना में डॉ. हीरालाल जैन ने वीर नि.सं. 614 और 683 के बीच दोनों आचार्यों का काल निर्धारित किया है। आचार्य पुष्पदंत के साथ भूतबलि को भी अर्हद्बलि का शिष्य बताया गया है। आगम में ऐसा कथन आया है कि भूतबलि के दीक्षा गुरु अर्हद्बलि और शिक्षा गुरु आ. धरसेन रहे हैं एवं आप अल्प वय में ही दीक्षित हो गये थे और दीर्घायु रहे, आ.पुष्पदंत की समाधि के पश्चात् भी अधिक समय तक षट्खण्डागम का लेखन आपके द्वारा निष्पन्न किया गया।

धवला में एक और नया आलेख पढ़ने को मिला - आचार्य वीरसेन ने आचार्य भूतबलि को प्रणाम कर उनके शारीरिक व आत्मिक

Created by Universal Document Converter

तेज का वर्णन इन शब्दों में किया है – ''आचार्य भूतबलि की आंतरिक ऊर्जा इतनी बढ़ी हुई थी, जिससे ब्रह्मचर्य जन्य सभी उपलब्धियाँ उन्हें हस्तगत हो गई थीं, ऋद्धि व तपस्या के कारण प्राणी मात्र उनकी पूजा करता था उनके शारीरिक सौंदर्य के संबंध में लिखते हैं – सौम्य आकृति के साथ भूतबलि के केश अत्यन्त संयत और सुन्दर थे, केशों की कृष्णता और स्निग्धता के कारण वे युवा ही प्रतीत होते थे।

दिगंबर जैन साहित्य इतिहास में नरहवान (भूतबली) का एक हृदयस्पर्शी कथ्य ऐसा भी आया है कि नहवान (नरवाहन) वमि देश में स्थित वसुन्धरा नगरी के अहरात वंश का प्रसिद्ध राजा था, इसकी रानी का नाम सरूपा था, यह बड़ा पराक्रमी व धर्मनिष्ठ था, एक बार नहवान के राज्य पर ईस्वी सन् 61 के लगभग, उनका विरोधी राजा शतकर्णी ने इनके राज्य पर आक्रमण कर दिया, घोर युद्ध के बाद नहवान पराजित हो गया और युद्ध में उसका सर्वस्व विनष्ट हो गया, उसने संधि कर ली, शतकर्णी ने विजय के अभिमान में नहवान की मुद्रा के सिक्कों को लूटकर, उन पर अपने नाम की मुद्रा अंकित कर दी और वे राज्य में चलाये गये शतकर्णी के इस अकृत्य से इन्हें संसार व भोगों से वैराग्य हो गया, फिर उसी नगर में नहवान के एक मित्र मगध राजा को मुनिवेश में देखकर उनके उपदेश से प्रेरित होकर उन्होंने भी (नहवान) दीक्षा ले ली उस समय राज्यश्रेष्ठी सुबुद्धि भी वहाँ विद्यमान थे, वे भी इन्हीं के साथ दीक्षित हो गये, ये दोनों मुनिराज अत्यधिक ध्यान व तप के आराधक थे, जिसमें एक का नाम भूतबलि (नरवाहन) और सुबुद्धि श्रेष्ठी का नाम पुष्पदंत रखा। यह दोनों प्रकाण्ड प्रज्ञा के धनी आचार्य पुष्पदंत एवं भूतबलि इस प्रथम श्रुतस्कन्ध के रचयिता हैं।

Created by Universal Document Converter

सचमुच 'प्रथम श्रुतस्कन्ध षट्खण्डागम' की उत्पत्ति सिद्धान्त सूरि धरसेन के एक विकल्प का वरदान है, अत: षट्खण्डागम के मूलकर्ता आचार्य धरसेन और उत्तरकर्त्ता आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि है, इसे षट्खण्ड सिद्धान्त, आगम या सिद्धान्त ग्रन्थ भी कहते हैं यह संपूर्ण आगम अपभ्रंश, शौर्यसैनी प्राकृत में लिखा गया है। इसका रचना काल विक्रम संवत् 144 शक संवत् 9 तथा ई. सन् 86 के पश्चात् माना गया है, इसमें जीव के कर्म प्रकृति, बंध प्रदेश-सत्ता-मिथ्यात्व व कषाय का बड़े विस्तार से वर्णन आया है 'महामंत्र णमोकार' भी इस ग्रन्थ के प्रथम सूत्र में निबद्ध मंगल के रूप में लिखा गया है , हमारे पंच परमेष्ठी तो अनादि हैं ही, लेकिन इस मंत्र को शब्द ब्रह्म करने वाले आचार्य पुष्पदंत हैं महामंत्र की ठोस नींव पर ही यह सिद्धान्त का भव्य भवन खड़ा हुआ है। 32 अक्षर का एक श्लोक होता है इस प्रकार षट्खण्डागम का प्रारंभिक भाग वनवास देश में व शेष भाग द्रविड़ देश में रचा गया।

मुक्तिप्रदायी प्रथम श्रुत स्कन्ध का यह प्रथम लेखन कार्य बड़ी समृद्धता पूर्वक सम्पन्न हुआ, इसलिए इसका 'प्रथम श्रुत स्कन्ध' नाम सार्थक है। अरे! इन ताड़पत्रीय ग्रन्थों में उन महर्षियों के अद्भुत त्याग व अनमोल श्रम का स्पष्ट दर्शन होता है क्योंकि पूर्व में हजारों वर्षों तक तो लेखन की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, लेकिन फिर काल परिवर्तन को देखते हुए क्षयोपशम की हीनता वाले हम जैसे जीवों के सौभाग्य से यह समर्थ आचार्य एवं 'सिद्धान्त कर्म विज्ञान' सांगोपांग रूप से हमें मिल गया, इस दुषम काल में सचमुच यदि 'षट्खण्डागम' नहीं होता, तो प्रचुर मात्रा में जितना भी सिद्धान्त साहित्य विद्यमान है वह भी नहीं होता इसका श्रेय केवल-केवल इस महास्कन्ध को ही जाता है।

Created by Universal Document Converter

इस युग के उत्तरवर्ती आचार्य भगवन्त तो इस महा-सिद्धान्त पर ऐसे मुग्ध हो गये कि षट्खण्ड पर एक के बाद एक टीकाओं का सिलसिला चल पड़ा। आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि के लगभग ही अध्यात्म श्रुत के प्रणेता आचार्य कुन्दकुन्द हुए, उन्होंने भी इसके प्रथम तीन खण्डों पर बारह हजार श्लोक प्रमाण 'परिकर्म' नामक टीका लिखी (समय ई. 127-179) लेकिन दुर्भाग्य रहा कि वह आज अनुपलब्ध है, इनके पश्चात् दूसरी टीका प्रथम पाँच खण्डों पर आचार्य समन्तभद्र ने की (ई. 21-2 में), तीसरी टीका इसके पाँच खण्डों पर आचार्य श्याम कुण्ड ने की, (ई. 21.3) में चौथी टीका आचार्य वीरसेन स्वामी कृत जो हमें वर्तमान में प्राप्त है (ई. 792-823) और एक टीकाकार आचार्य बप्पदेव का भी नामोल्लेख आता है।

भगवंत पुष्पदन्त और भूतबलि के एक हजार वर्ष के अन्तर काल में नवीं शताब्दी में विशिष्ट श्रुतलब्धि धारक, सिद्धान्त धुरंधर आचार्य वीरसेन हुए, इनकी अर्न्तउपासना व लेखन शक्ति इतनी प्रगाढ़ थी कि वे षट्खण्डागम की शैली पर इस तरह रींझ गये कि इसके पाँच खण्डों पर 72 हजार श्लोक प्रमाण 'धवला' टीका लिख कर दि. जैन इतिहास को अमरता प्रदान की है।

आचार्य भूतबलि कृत 'महाबंध' के तीस हजार सूत्र तो स्वयं में एक गुरुतापूर्ण खण्ड है। अत: यह महाबंध भी किसी टीका से न्यून नहीं है इसे ही 'महाधवल' कहते हैं तथा षट्खण्डागम के प्रथम पाँच खण्डों पर 72 हजार श्लोक प्रमाण टीका का एक ही नाम 'धवला' है।

धवला टीका का 1/3 भाग प्राकृत एवं 2/3 भाग संस्कृत में लिखा

Created by Universal Document Converter

गया इसे आचार्य वीरसेन स्वामी ने शक् संवत 738 ईस्वीं सन् अनुसार 8 अक्टूबर सन् 816 बुधवार कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को पूर्ण किया था।

सचमुच! आचार्य वीरसेन की 'धवला' टीका में उनकी अद्भुत प्रतिभा के दर्शन होते हैं, जो कि पूर्व परम्परा की प्रांजल मर्यादा से अभिसिंचित है, इस टीका की गहराई से ज्ञात होता है कि उनका संपूर्ण ही जीवन ध्यान, अध्ययन, ग्रन्थ संकलन व टीका लेखन में बीता। आचार्य वीरसेन की अन्य कोई रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं, लेकिन उपलब्ध साहित्य रचना में उनकी अनुपम प्रज्ञा व विलक्षण स्मृति की झलक मिलती है।

आचार्य वीरसेन की यह बहुकाय विशाल टीका अखण्डरूप से प्रकाश में आ चुकी है। अति सुन्दर व सरस प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई है, इसमें आचार्य ने विषय के अनुरूप स्वयं ने प्रश्न उठाकर स्वयं ही समाधान प्रस्तुत किए हैं। इस टीका में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न आचार्य ने ऐसा उठाया कि भगवान महावीर की वाणी 66 दिन तक क्यों नहीं खिरी? स्वयं ने ही उत्तर दिया – गणधर के अभाव में।

फिर पुनः प्रश्न किया कि क्या सौधर्म इन्द्र गणधर को उपस्थित नहीं कर सकता था? तब उत्तर आया कि वस्तुव्यवस्था का उल्लंघन करने में इन्द्र भी असमर्थ था। वास्तव में आचार्य ने कितना सटीक व संक्षिप्त उत्तर देकर प्रश्न को यहीं विराम दे दिया। एक छद्मस्थ के उपयोग रूप ही महत्त्वपूर्ण चर्चा आई – धवला के माध्यम से हमारा भ्रम दूर हो सकता है – ऐसा आया है छद्मस्थ को एक काल में स्व व पर में से एक ही उपयोग होता है, अंतरंग पदार्थ की उपयोगरूप दशा में बहिरंग पदार्थ का उपयोग नहीं पाया जाता और बहिरंग पदार्थ

Created by Universal Document Converter

की उपयोगरूप दशा में अंतरंग पदार्थ का उपयोग नहीं पाया जाता। ऐसी अनेक अध्यात्म संबंधी विषय भी इसमें आये हैं, जिससे हमारी शंका व भ्रांतियों का निराकरण हो सकता है।

टीका नामोल्लेख के पीछे भी यह अनुमान किया जाता है कि उस समय राजा अमोघवर्ष का शासन था। राजा अमोघ जिनधर्मी होने के साथ बड़े नीतिज्ञ, दयालु और महातेजस्वी थे, उनकी एक उपाधि 'अतिशय धवल' थी, इसलिए भी इस टीका का नाम 'धवला' सम्भव है, दूसरे धवला टीका कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को पूर्ण हुई थी, अतः इस टीका का नाम आचार्य द्वारा 'धवला' रखा गया।

धरसेनाचार्य के समय के लगभग एक ओर आचार्य गुणधर हुए, उन्हें द्वादशांग श्रुत में ज्ञान प्रवाद पूर्व के दसवें वस्तु अधिकार के तीसरे प्राभृत (कषाय प्राभृत) का ज्ञान था, उन्होंने 'कषाय प्राभृत' ग्रन्थ की रचना की, जिसमें कषाय के जो असंख्य स्थान मंद व तीव्र के भेद को लेकर कहे हैं, उनका विस्तार से वर्णन आया है। कषाय पाहुड लिखने का उद्देश्य कोई भी कषाय बढ़ाने या इनके भेदों को गिनने के लिए नहीं, लेकिन वह तो अकषाय (वीतराग भाव) को प्रगट करने के लिए है, आचार्य वीरसेन ने तो इस ग्रन्थ पर भी 20 हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखी, किन्तु फिर वे दिवंगत हो गये। पश्चात् उनके ही सुयोग्य शिष्य आचार्य जिनसेन ने 40 हजार श्लोक प्रमाण टीका और लिखकर इसे पूर्ण किया। इस टीका का नाम 'जयधवल' है। इसका समय 759 अर्थात् ईस्वी सन् 831 माना गया है। इस प्रकार यह 'जय धवला' टीका 60 हजार श्लोक प्रमाण आज भी उपलब्ध है। इसी कषाय प्राभृत पर यतिवृषभ ने भी 6000 चूर्णि

Created by Universal Document Converter

सूत्र रचे हैं और इस पर 12 हजार श्लोक समुद्रहरण मुनिराज द्वार लिखे गये। धवला टीका 16 भागों में विभाजित है, जो वर्तमान में हिन्दी में भी सुलभता से प्राप्त हो जाती है।

गौरव का विषय यह है कि 72 हजार श्लोक प्रमाण टीका, इस प्रकार 92 हजार श्लोक प्रमाण धवला टीका और 20 हजार श्लोक प्रमाण जय धवला टीका अकेले आचार्य वीरसेन का दीर्घकाय लेखन है, जो दिगंबर इतिहास का ही नहीं, बल्कि विश्व का एक कीर्तिमान है महाभारत का परिमाण एक लाख श्लोक प्रमाण माना जाता है, किन्तु वह किसी एक पुरुष की रचना नहीं है।

आचार्य वीरसेन के संबंध में उनके शिष्य जिनसेन द्वारा लिखित प्रशस्ति में उनकी नैसर्गिक प्रज्ञा को साक्षात् 'केवली' के समान, समस्त विश्व की पारदर्शी कहा अर्थात् वे उस समय के कलिकाल सर्वज्ञ कहलाये हैं। उनकी वाणी को षट्खण्डागम में 'सर्व अर्थ सिद्ध' बताया है और विद्वानगण उनके ज्ञान तेज के कारण उन्हें प्रज्ञा श्रमणों में श्रेष्ठ आचार्य 'श्रुत केवली' कहते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि धवला और जय धवला टीका के जो प्राकृत एवं संस्कृत अंश हैं, उनका हमारे इस शताब्दी में हुए प्रबुद्ध विद्वानों ने हिन्दी अनुवाद कर इसे अत्यन्त सरल कर दिया, जिन्हें पढ़कर हम करणानुयोग संबंधी बड़ी-बड़ी गुत्थियाँ सुलझा सकते हैं। सिद्धान्त व आगम के ज्ञाता सम्मानीय विद्वत् समुदाय ने इन सारे ग्रन्थों को सार्थक कर दिया, हम विद्वानों के श्रम व प्रतिभा को हम लाखों दीनारों से तोले तो भी सचमुच उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता इन्हीं का उपकार है कि यह धवला टीका भी 16 भागों में और जयधवला टीका भी 16 भागों में भारत के दिगंबर जिन मंदिरों

Created by Universal Document Converter

में स्थान-स्थान पर हमें उपलब्ध होने लगी हैं।

जगत का वैभव प्रथम श्रुत स्कन्ध 'षट्खण्डागम' एवं उसकी टीका के उद्गम का अति संक्षिप्त इतिहास, इस महापर्व श्रुतपंचमी की अमूल्य धरोहर है, जिसे हम कोटि-कोटि वंदन करते हैं। इस पर्व से सीखें कि हमारे द्वारा सिद्धान्त ग्रन्थ व समस्त जिनवाणी की सुरक्षा, संरक्षण व असीम सम्मान होना चाहिए, अवज्ञा एक शब्द की भी नहीं क्योंकि सिद्धान्त किसी सुयुक्तियों व कुतर्कों से ध्वस्त नहीं होते, बल्कि अचल मेरु की तरह अडिग रहते हैं। जैनदर्शन को गर्व है कि सिद्धान्तों के ठोस धरातल पर खड़ा होने से इसे कोई परास्त नहीं कर सकता।

निर्ग्रन्थ ऋषियों की लड़ी बद्ध कड़ी में आचार्य वीरसेन के पश्चात् आगम ग्रन्थ रचने वाले और भी महाप्रतिभाशाली आचार्य, मुनिश्वर हुए, सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमीचन्द्राचार्य ने भी गोम्मटसार (जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड) की रचना, इसी षट्खण्ड की साधना द्वारा की थी।

जैन सिद्धान्तों के परिसमूह के लिए कई लेखक व विद्वानों ने अपने अभिमत इसप्रकार व्यक्त किये हैं। ''यह महाश्रुत सैद्धान्तिक परम्परा व रचना दृष्टि, पारिभाषिक शैली व जटिल विषयवस्तु की दृष्टि से बेजोड़ व अद्वितीय है।''

आगम श्रुत की इस परम्परा में, अध्यात्मश्रुत 'द्वितीय श्रुत स्कन्ध' का उद्भव कैसे हुआ? यह भी हमारे लिए विचारणीय तथ्य है - आचार्य धरसेन के लगभग ही प्रबल मेधावी आचार्य कुन्दकुन्द इस भारत भू पर विचरण कर रहे थे? जिस समय प्रथम श्रुतस्कन्ध 'सिद्धान्त सूत्र' आचार्य पुष्पदंत और भूतबली द्वारा लिखा जा रहा था

Created by Universal Document Converter

उसी सिद्धान्त गुरु परिपाटी में आचार्य कुन्दकुन्द को अध्यात्मश्रुत लिखने का विकल्प आया क्योंकि उन्हें अपने निर्मल ज्ञान में यह विदित हो चुका था कि सिद्धान्त के पाठी उत्तर काल में बहुत थोड़े रह जाने वाले हैं और बुद्धि भी मंद से मंदतर होती जा रही है, अतः आगम को अल्पबुद्धि द्वारा उद्घाटित करना असंभव सा है, आगम का सार अध्यात्म में छुपा होता है और यह अध्यात्म ही मोक्षमार्ग का मूल है इस विचार से ही उन्होंने अध्यात्म को अर्थात् शुद्ध चैतन्य को अपनी लेखनी का केन्द्रबिन्दू बनाया और प्रभु कुन्दकुन्द ने अध्यात्मरस से ओतप्रोत समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय एवं अष्टपाहुड़ जैसे पंचरत्न परमागम का दिव्य दान भरत क्षेत्र को देकर मुक्ति का द्वार खोल दिया।

अहो! यह ताड़पत्रीय परमागम हमें अविकल रूप में उपलब्ध हो गये, भाग्य हमारे खुल गये, लाखों स्वर्ण मुद्राओं से भी इसके एक अक्षर का मूल्यांकन नहीं हो सकता।

प्रज्ञा सिन्धु आचार्य कुन्दकुन्द के विदेह गमन का भी आलेख मिलता है। स्वयंचारणऋद्धि द्वारा अथवा देव उन्हें ले गये थे, उनको चित्त में एक वेदना थी कि भरत क्षेत्र में तीर्थंकरों का विरह हो गया है और सीमंधर परमात्मा की कल्याणी वाणी, इस भरत क्षेत्र के जीवों को महा अज्ञान का नाश करने के लिए मिलना चाहिए, इस विकल्प मात्र से वे विदेह पहुँचे गये, आठ दिवस वहाँ निराहार रहे और भगवान की अमृत सुधा को पंच परमागम में पिरो कर हमें धन्य कर दिया। अध्यात्म का यह सूर्य आज भी हमकों प्रकाशित कर रहा है और लाखों की संख्या में इनका प्रकाशन भी हो रहा है – यह जैन जगत का महाभाग्य समझना चाहिए।

Created by Universal Document Converter

आचार्य कुन्दकुन्द के एक हजार वर्ष बीत जाने पर नवीं शताब्दी में आचार्य अमृतचन्द्र हुए, जिन्होंने इन परमागम ग्रन्थों पर गहन भावों से युक्त, विस्तृत टीका की, जो जैन साहित्य ही नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य में भी अपना सर्वोच्च स्थान बनाये हुए है, इनके 250 वर्ष पश्चात् आचार्य जयसेन मुनिश्वर, पद्मप्रभुमल्लधारी देव एवं श्रुतसागर आचार्य आदि समर्थ आचार्य हुए, षट्खण्डागम की तरह इन आचार्यों ने पंच परमागम पर अनेक टीकायें लिखीं। सचमुच! यह 'द्वितीय श्रुत स्कन्ध' का प्रासाद हमारे लिए परम उपकारी सिद्ध हुआ है।

इसी श्रमण परम्परा में अध्यात्म क्रांति सृष्टा पूज्य गुरुदेव का उदय हुआ, जिन्होंने सैंकड़ों वर्षों से बंद जिनवाणी का विमोचन किया, इन सुषुप्त आगम व परमागम का रहस्य अपनी ज्ञान की मथानी से मथकर संपूर्ण मुमुक्षु जगत को दिया। अरे! उस महापुरुष ने इस कलि के शाप को धो दिया। 45 वर्षों तक अध्यात्म की घनघोर बरसातें जैसी पूज्य गुरुदेव द्वारा हुई वैसी इस 2000 वर्ष के युग में नहीं हुई – मैं तो कहता हूँ कि इस युग में सम्यग्दर्शन के आविष्कर्ता पू. गुरुदेव ही हैं वे नहीं होते तो हमारे प्राण मौत के मुँह में होते – आज लाखों लोगों को जीवन दान देने वाले अकेले ये महापुरुष ही थे।

ये ग्रन्थराज हमारे तक आ जाना, सब कुछ मूडबिद्री का उपकार है इसी दक्षिण कर्नाटक में मूडब्रिदी छोटा क्षेत्र है जो शताब्दियों से जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ बना हुआ है। इन ग्रंथों की ताड़पत्रीय प्रति एक मात्र मूडबिद्री के जैन भण्डार में सुरक्षित थी। वर्षों से अलभ्य यह कृतियाँ एवं रत्नमयी प्रतिमायें मात्र दर्शन पूजन की वस्तु बन गयी थी, हजारों वर्ष पश्चात् करीब 150, 200 वर्ष पूर्व इन मूल ग्रंथों

Created by Universal Document Converter

की प्रतिलिपियाँ वहाँ के साहित्य भण्डार से कैसे बाहर निकलीं, इसका भी लम्बा कथानक है।

मुम्बई के एक श्रेष्ठी माणिकचंदजी थे, उन्होंने वहाँ से यात्रा संघ निकाला था, यात्रा करते वे मूडबिद्री पहुँचे और इन महाग्रन्थों के दर्शन किये तथा उनको सहज पढ़ने का भाव जागा श्रेष्ठी को प्राकृत, संस्कृत आदि भाषा का ज्ञान नहीं था, फिर उन्होंने पूछा! कोई इन्हें पढ़ सकता है क्या? तब उन्हें बताया गया कि जैनबद्री में ब्रह्मसूरि शास्त्री हैं। वे इस भाषा के अभ्यासी हैं और विद्वान भी। यात्रा में उनके साथ पं. हीरालालजी भी थे, उन्होंने वहाँ से आकर विद्वान फूलचंदजी शास्त्री व देवकीनंदनजी को पत्र लिखा। पत्र पढ़ते ही वे इस पुण्य कार्य के लिए निकल पड़े, विद्वान हीरालालजी, फूलचंदजी, देवकीनंदनजी व उत्तर भारत से माणकचंदजी, पण्डित गोपालदासजी बरैया आदि विद्वानों ने भरसक प्रयत्न किया है, ये प्राकृत भाषा के अधिकारी विद्वान थे, उन्हें इस सिद्धान्त प्रकाशन के लिए, क्रियात्मक सहयोग व परामर्श अनेक विद्वानों से प्राप्त करने पड़े।

वहाँ भट्टारक परम्परा थी, अतः सभी विद्वानों ने एकत्रित होकर श्री भट्टारकजी से बड़े अनुनय व स्नेहपूर्वक निवेदन किया कि इनकी कुछ प्रतिलिपियाँ करवाने की हमारी प्रबल भावना है, आप आज्ञा दीजिए। श्री भट्टारकजी ने उन्हें शीघ्र सहमति दी, लेकिन साथ में उन्हें प्रतिज्ञाबद्ध भी कर दिया था कि इन प्रतिलिपियों को आप अन्यत्र नहीं ले जायेंगे इसी मंदिर में बैठकर लिखेंगे।

विद्वानगण इस महा लोकोत्तर अनुष्ठान की स्वीकृति पाकर प्रसन्नता से भर उठे, त्वरित ही उन्होंने प्राकृत भाषा व कन्नड़ के एक कुशल विद्वान गजपतिजी उपाध्याय को लिखने बिठाया, उनकी

Created by Universal Document Converter

पत्नी लक्ष्मीबाई, वह भी विदुषी महिला थी, उसने अपने पति को प्रत्येक पत्र (ताड़पत्र, पृष्ठ) की दो-दो प्रतिलिपि (नागरी लिपि) करने का आग्रह किया, उन्होंने इस आग्रह को सहर्ष स्वीकार किया, अत्यधिक सावधानीपूर्वक, बड़े श्रद्धा व मनोयोग के साथ, ग्रन्थराज, सिद्धान्त षटखण्डागम का पावन लेखन प्रतिलिपि के रूप में, इस धन्य घड़ी में प्रारंभ हुआ। उन्होंने इसकी एक प्रतिलिपि तो श्री भट्टारकजी को सौंपी ओर एक प्रतिलिपि गुप्तरूप से श्रीमती लक्ष्मीबाई द्वारा अपने निवास स्थान पर भेजी, वे इसे लाकर सुरक्षित रख देती थी, इस तरह बड़े ही कठिन परिश्रम द्वारा लगभग 26 वर्ष की लंबी अवधि में यह सिद्धान्त सागर का महागुरु कार्य, प्रतिलिपि लेखन का पूर्ण हुआ।

उस समय आवागमन के कोई साधन व सुविधायें उपलब्ध नहीं थी, अतः दोनों पति-पत्नी इस ग्रन्थराज को अपने शीश पर धारण कर मुम्बई के श्रेष्ठी माणकचंदजी के पास पहुँचे और इन्होंने उनसे इस ग्रन्थ को विराजमान करने की विनय की, श्रेष्ठी बोले मैं तो वचनबद्ध हूँ, मेरा दुर्भाग्य है कि मैं इन्हें नहीं रख पा रहा हूँ, वे इसके दर्शन कर झुक पड़े, फिर वहाँ से दोनों पति-पत्नी मार्ग में फलादि भक्षण करते हुए, अति उल्लास के साथ विदिशा नगरी पहुँचे वहाँ से भी उन्हें निराश होना पड़ा। वहीं पर एक बाबूलालजी सेठ थे उन्होंने उसे सहारनपुर ले जाने को कहा, भारी विवशता के साथ वे सहारनपुर पहुँचे, वहाँ के श्रेष्ठी रायबहादुर सा. इस सिद्धान्तराज को देखते ही नाँचने लगे, रजत व स्वर्ण मुद्राओं से इसकी पूजा की और दोनों पति-पत्नी का बहुत सम्मान किया फिर उन्होंने इस ग्रन्थराज को बड़ी भक्ति व विनय पूर्वक जिन मंदिर में विराजमान कर दिया। कुछ

Created by Universal Document Converter

समय पश्चात् इसकी विद्वानों द्वारा प्रतियाँ तैयार करवाई गईं, वे हस्तलिखित प्रतियाँ बड़े-बड़े नगरों में स्थित जिनालयों की दर्शनीय वस्तु बनी हुई हैं। इन ताड़पत्रों की संख्या करीब 600 के आसपास है। यह उल्लेख आया है तथा इनकी लंबाई सवा दो फुट और चौड़ाई तीन इंच है, ऐसा अनुमान किया गया है कि उस समय इसके लेखन कार्यादि में 20000 की राशि खर्च हुई थी।

इन सिद्धान्त ग्रन्थों के नामोल्लेख के संबंध में भिन्न-भिन्न धारणायें बनीं हुई हैं। लेकिन वे निर्मूल हो सकती हैं। अधिकांश जैन समुदाय भी, धवल, महाधवल, जयधवल के नाम से परिचित हैं, मूडबिद्री में भी इन्हें इसी नाम से पुकारा जाता है किन्तु ग्रन्थ का असली मूल नाम 'षट्खण्डागम' है।

मूडबिद्री में मूल ताड़पत्रीय प्रतियों के गुप्त रूप से फोटो चित्र भी लिये गये हैं। फिर वहाँ से उन्हें फलटन के शास्त्र भण्डार में भेजा गया। ये हस्तलिखित ग्रंथ पत्र उपलब्ध हो जाने पर विद्वानों द्वारा उनकी कन्नड़ व नागरी में प्रतिलिपि बाहर आई। प्राचीन काल में ग्रंथ प्राकृत लिपि में ही लिखे जाते थे कागज भी विद्यमान नहीं होने से जंगलों से ताड़पत्र लाकर उन्हें शास्त्राकार कर लिखा जाता था दक्षिण में लाखों ग्रंथ ताड़पत्र पर ही लिखे गये थे किन्तु आज वे उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि उस समय हम जैसे लोगों में इन्हें समझने की क्षमता नहीं थी तो विदेशी लोग जिन्हें भाषाओं का ज्ञान करने का बड़ा उत्साह था उन्हें पच्चीस-पच्चीस पैसे में बेच दिये गये। उनके लिए यह हीरे जवाहरात जैसे निधि थी और हजारों मुगल शासन के द्रोहियों द्वारा होली बनाकर जला दी गई, जो कई वर्षों तक जलती रही। निःसंदेह हमारा विशाल वांगमय काल कवलित हो इससे हमारे

Created by Universal Document Converter

इतिहास की बहुत बड़ी क्षति हुई है, और शेष जो कलेवर बचे हैं, उनका हमारे जीवन काल में उद्घाटन हो गया यह धन्य-धन्य भाग्य समझना

आज से करीब 200-300 वर्ष पहले आचार्य कल्प पण्डित टोडरमलजी जयपुर और मूलचंदजी सोनी जैसे प्रकाण्ड विद्वान इन सिद्धान्त के दर्शन को तरस गये, इनकी प्राप्ति तो दूर, वे इन्हें देख तक नहीं पाये, उन्होंने स्वयं लिखा है, सुना जाता है कि 'सिद्धान्त ग्रन्थ दक्षिण में विराजमान हैं' क्योंकि मार्ग में आवागमन के साधन नहीं थे, यह भी पढ़ने को मिला है कि इन्होंने दो लोगों को ग्रन्थ लाने व दर्शन के लिए भेजा था, किन्तु वे रास्ते में ही समाप्त हो गये। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर पण्डितजी को गहरी वेदना हुई।

सिद्धान्त का यह भंडार सचमुच देखा जाये तो मूडबिद्री का ही प्रदेय है, अभी भी दक्षिण भारत के कर्नाटक देश में ऐसे अनेक छोटे-छोटे प्राचीन क्षेत्र हैं, जो जैन इतिहास में अपना विशेष स्थान बनाये हुए हैं। वे हमारी पवित्र संस्कृति व उसके वैभव का परिचय देते हैं, दिगंबर संप्रदाय के सुविख्यात ज्ञात व अज्ञात ग्रंथों का प्रायः इन्हीं स्थानों पर लेखन भी हुआ था, आचार्य समूह पुष्पदंत, भूतबलि, समन्तभद्र, वीरसेन, गुणधर, जिनसेन, नेमीचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्द, अमृतचन्द्र, उमास्वामी, जयसेन आदि महर्षि संतों ने दक्षिण से उत्तर, उत्तर से दक्षिण के इस भूभाग को अलंकृत किया है।

उस समय इन्हीं देशों की नगरियों में विशाल मुनि सम्मेलन हुआ करते थे, सौ-सौ योजन की दूरी से आचार्य संघ सहित सम्मिलित होते थे, हजारों-हजारों साधुगण एकत्रित हो, प्रज्ञा में श्रेष्ठ, ध्यान व तप में लीन आचार्यों के कठोर अनुशासन में रहकर अध्ययन व

Created by Universal Document Converter

वीतराग भाव स्वरूप अपने परम शुद्ध चैतन्य की साधना में तत्पर रहते हैं। मुनि सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य भी, मुनिदशा में प्रचुर स्वसंवेदन पूर्वक अपनी चैतन्य वाटिका में विहार करना होता है अन्य कुछ बाह्य प्रयोजन नहीं।

ऐसे निर्ग्रन्थ पंथ के पथिक, सिंहवृत्ति के धारक निसंग, शुद्धोपयोगी त्रैलोक्य के ईश समस्त मुनि भगवन्तों के चरणों में शत्-शत् वंदन करते हैं।

हम देख रहे हैं कि जैन समुदाय के सर्वेक्षण से वर्तमान समय में प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों, शिलापट्ट, शिलालेख, प्रशस्ति-पत्र एवं ताड़पत्र आदि सैंकड़ों की संख्या में प्राप्त हो रहे हैं। पाश्चात्य देशों ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मन आदि में आज भी ये सुरक्षित हैं एवं दर्शनीय वस्तु बने हुए हैं इससे हमारी गौरवमय प्राचीन संस्कृति की श्रद्धा और अधिक दृढ़ हो जाती है।

इस युग में आगम व अध्यात्म श्रुत के इस लेखन ने 2000 वर्ष के इतिहास में अभूतपूर्व क्रांति की है तथा उत्तरवर्ती आचार्यों को भी इन निधियों से अनेक शंकाओं के समाधान मिले। अप्राप्य इन कृतियों को प्राप्तकर सिद्धांत रसिक व अध्यात्मप्रिय विद्वत्त वर्ग भी धन्य व तृप्त हुआ है।

इस मंगल पर्व का संदेश यह है कि श्रुतदेवता तो अरहन्त परमात्मा से ही निकलते हैं, हमें अरहंतदेव सदा-सदा उपलब्ध नहीं होते, किन्तु श्रुतदेवता तो सदा ही हमारे निकट हैं, इन श्रुतदेवता की उपासना आठ द्रव्य तक सीमित न रखकर हमें अपने भावश्रुतदेवता 'चैतन्यदेव' को जगाना चाहिए।

Created by Universal Document Converter

गौरवान्वित हैं हम! श्रमण परम्परा के धारावाही इतिहास ने इस युग को स्वर्ण काल बना दिया, दिगम्बर साहित्य के यह अमर श्रुतरत्न प्राणियों को ज्वाजल्यमान पथ प्रशस्त करते रहेंगे।

ऐसे द्रव्य व भावों की शुद्ध अर्घावली के साथ वाग्देवता का अर्घ उतारण करते हैं, 'श्रुतधारा पर्व जयवन्त वर्ते, जयवंत वर्ते।'

श्रुतपंचमी महापर्व
जेष्ठ शुक्ला पंचमी सं. 2079
4 जून 2022

आचार्य कुन्दकुन्द फाउण्डेशन
कोटा
मो. 9414181512

Created by Universal Document Converter